अलख दृष्टि

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

प्रवेशांक • वर्ष-1 • अंक-1 • जनवरी-मार्च, 2013

नववर्ष पर हार्दिक शुभकामनाओं के साथ–

डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'

मानद सम्पादक, अलख दृष्टि

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	दार्शनिक शोध-पद्धति विज्ञान	प्रो. एस.पी. दुबे	01-11
02.	असामयिक है जय-पराजय का मॉडल	प्रो. बच्छराज दूगड़	12-14
03.	वेदनिहित कर्म का वैज्ञानिक दृष्टिकोण	प्रो. सत्यप्रकाश दुबे	15-21
04.	मूल्यपरक आचरण हेतु संस्कृत शिक्षा की अनिवार्यता	प्रो. लोकमान्य मिश्र	22-25
05.	धर्मशास्त्रों में नारी स्वरूप, उनके अधिकार व भ्रूणहत्या रोकथाम	डॉ. शंकरलाल शास्त्री	26-31
06.	भारतीय दर्शन में कारण-कार्यवाद	डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी	32-38
07.	समाजोन्नयन में शिक्षित ग्रामीण युवाओं की भूमिका	डॉ. विजेन्द्र प्रधान	39-43
08.	सामाजिक जीवन में अहिंसा की उपयोगिता	डॉ. अनेकान्त कुमार जैन	44-48
09.	युवाओं में अभिप्रेरणा की कमी एवं सामाजिक विघटन	श्रीमती पुष्पा मिश्रा	49-51
10.	The Concept of Service in Jainism	Dr. Pradyumna Shah Singh	52-56
11.	Teaching English to the Underprivileged Students	Ms. Tripti Tripathi	57-60
12.	Understanding of Personality Development from Sikh Point of View	Gurdeep Singh	61-64

भारतीय दर्शन में कारण-कार्यवाद

डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

कारण-कार्यवाद दार्शनिक जगत् का एक प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है अर्थात् कोई घटना अकारण नहीं होती है। जब भी कोई घटना घटित होती है तो उस घटना का कोई कारण अवश्य होता है। लगभग सभी दार्शनिक मनीषाओं ने कारण-कार्य सम्बन्धी इस सत्य को स्वीकार किया है। अर्थात् प्राय: सभी दार्शनिक कारण कार्य के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। कारण-कार्य की परिभाषा में भी प्राय: सभी दार्शनिक एक मत हैं। दार्शनिकों के अनुसार कारण पूर्ववर्ती होता है (प्राक्भावित्वं कारणत्वम्) और कार्य पश्चातवर्ती होता है (पश्चात् भावित्वं कार्यत्वम्) ऐसा कोई दार्शनिक दृष्टिगोचर नहीं होता है जो कार्य को पूर्ववर्ती और कारण को पश्चातवर्ती कहता हो। इससे यह भी सिद्ध है कि कारण जब भी होगा तब पूर्व में होगा और कार्य जब भी होगा तब कारण के बाद में ही होगा।[1]

कारण-कार्य की विशेषताएँ

प्राय: सभी भारतीय दार्शनिक कारण-कार्य के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। कारण-कार्यवाद के अन्तर्गत कारण-कार्य की निम्न विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं-

1. कारण पहले होता है और कार्य बाद में अर्थात् काल की दृष्टि से कारण सदैव कार्य के पहले होता है। कार्वेथरीड के अनुसार कार्य कारण की अपेक्षा बाद में ही होता है।
2. कारण पूर्ववर्ती ही नहीं अपितु नियत पूर्ववर्ती होता है अर्थात् कभी ऐसा नहीं कह सकते कि कारण कभी पूर्ववर्ती होता है और कभी कुछ और हो सकता है। नियत पूर्ववर्ती प्रत्येक स्थिति में कारण को पूर्ववर्ती सिद्ध करता है।
3. कारण नियत पूर्ववर्ती ही नहीं, अव्यवहित पूर्ववर्ती होता है। दूरस्थपूर्ववर्ती को कारण न मानने के लिए अव्यवहित पूर्ववर्ती शब्द का उल्लेख किया गया है।
4. कारण कार्य का अव्यवहित पूर्ववर्ती ही नहीं होता अपितु निरुपाधिक पूर्ववर्ती भी होता है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि कोई क्रिया पूर्ववर्ती, नियत पूर्ववर्ती और अव्यवहित पूर्ववर्ती होने के बावजूद भी कारण नहीं कहलाती है, क्योंकि

वह क्रिया औपाधिक होती है, निरुपाधिक नहीं। जैसे स्विच आन करने पर पंखा चलता है और स्विच ऑफ करने पर पंखा रुक जाता है, किन्तु यहां कारण-कार्य सम्बन्ध इसलिए नहीं, क्योंकि यह किसी उपाधि अर्थात् बिजली पर निर्भर है। बिजली (इलेक्ट्रिक) होगी तभी पंखा चलेगा अथवा नहीं चलेगा।

5. कारण पूर्ववर्ती, नियत पूर्ववर्ती, अव्यवहित पूर्ववर्ती, निरोपाधिक पूर्ववर्ती के साथ-साथ अन्यथासिद्ध से शून्य भी होना चाहिए।[2] अन्यथा सिद्ध से तात्पर्य किसी कार्य से साक्षात् सम्बन्ध न रखने वाले अर्थात् घटोत्पत्ति से पूर्व गधे की उपस्थिति अन्यथा सिद्ध है। अत: घटोत्पत्ति के लिए गधे की उपस्थिति का कोई औचित्य नहीं है, इसीलिए कारण-कार्य की एक विशेषता में अन्यथासिद्ध शून्य कहा गया है।

6. कारण और कार्य पूर्णतया भिन्न-भिन्न भी नहीं होते हैं अर्थात् निरपेक्ष रूप से कोई भी तथ्य केवल कारण या केवल कार्य नहीं होता है। आज का कारण कल का कार्य हो सकता है और कल का कार्य परसों का कारण हो सकता है।[3]

प्राय: सभी भारतीय दार्शनिक कारण-कार्य सम्बन्धी उपर्युक्त तथ्य को स्वीकार करते हैं किन्तु कारण-कार्य के स्वरूप के सन्दर्भ में प्राय: सभी भारतीय दार्शनिक एकमत नहीं हैं। इसलिए कारण-कार्य के स्वरूप को लेकर भारतीय दर्शन में अनेक वाद दृष्टिगोचर होते हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. सत्कार्यवाद (सांख्य)
2. असत्कार्यवाद (न्याय-वैशेषिक)
3. सत्कारणवाद (विवर्तवाद) अद्वैतवेदान्ती शंकर
4. असत्कारणवाद (प्रतीत्य समुत्पाद) बौद्ध
5. सदसत्कार्यवाद (जैन)

कारण-कार्य के संदर्भ में भारतीय दार्शनिकों के उपर्युक्तवादों की विस्तृत मीमांसा यहां अपेक्षित है–

1. सत्कार्यवाद

यह सांख्यदर्शन का अभीष्ट मत है जिसके अनुसार प्रत्येक कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व अपने कारण में सत् रहता है। सत्-कार्य अर्थात् कार्य अपने कारण में पहले से निहित रहता है। तात्पर्य यह है कि जो पहले कारण में था वही कार्य के रूप में अभिव्यक्त होता है। सत्कार्यवादी सांख्य कारण से कार्य की नई उत्पत्ति स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार कछुआ जब अपने अंगों को निकालता है तो जो अंग पहले से थे वही अभिव्यक्त होते हैं अर्थात् कार्य में कोई नई उत्पत्ति नहीं होती है। सत्कार्य को सिद्ध करने के लिए ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका में कहा गया है–

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥[4]

1. असत्करणात्

जो असद् है अर्थात् अस्तित्वविहीन है वह अकारणात अर्थात् किसी का कारण नहीं हो सकता है। जो है ही नहीं, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है वह भला किसी का कारण कैसे हो सकता है? वन्ध्यापुत्र जिसका कोई अस्तित्व नहीं है, खरगोश की सींग का भी कोई अस्तित्व नहीं है तो ये किसी के कारण नहीं हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्ण कारण में यदि निहित नहीं होगा तो उसकी उत्पत्ति कभी संभव नहीं है। गीता भी कहती है-नासतो विद्यतेभाव: अर्थात् असत् से कोई भाव उत्पन्न नहीं हो सकता है।

2. उपादान ग्रहणात्

किसी कार्य की उत्पत्ति के लिए जैसे कारण का सत् होना आवश्यक है वैसे ही कार्य की उत्पत्ति के लिए उपादान कारण का अस्तित्व आवश्यक है। उपादान कारण मूल होता है। प्रत्येक कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व जिस कारण में निहित होता है वह उपादान कारण ही है। मिट्टी का घड़ा अपनी उत्पत्ति के पूर्व मिट्टी के पिंड में, सोने का आभूषण अपनी उत्पत्ति के पूर्व स्वर्ण पिंड में और लकड़ी की मेज अपनी उत्पत्ति के पूर्व लकड़ी में निहित है तभी तो इन-इन उपादानों से वैसे-वैसे कार्य उत्पन्न होते हैं। दही अपनी उत्पत्ति के पूर्व दूध में निहित है न कि पानी में । तेल अपनी उत्पत्ति के पूर्व तिल में रहता है न कि मिट्टी में या बालू में । अत: उपादान कारण के ग्रहण से ही कार्य होता है।

3. सर्वसम्भवाभावात्

सभी कारणों से सब कार्य संभव नहीं है। मिट्टी से सोने का घड़ा संभव नहीं है। लकड़ी से स्टील की मेज संभव नहीं है। पानी से दही संभव नहीं है। यदि असम्बद्ध कारणों

से कार्य की उत्पत्ति स्वीकार कर ली जाये तो किसी से भी किसी कार्य की उत्पत्ति स्वीकार की जा सकती है फिर अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग कार्य की आवश्यकता नहीं होती किन्तु सच्चाई यह है कि सभी कार्य सभी कारण से उत्पन्न नहीं होते हैं।

4. शक्तस्यशक्यकरणात्

किसी कार्य की उत्पत्ति उसी कारण से संभव है जिस कारण में उसे उत्पन्न करने का सामर्थ्य हो अर्थात् तेल उत्पन्न करने का सामर्थ्य तिल में है। मिट्टी के घड़े के लिए मिट्टी, स्टील की मेज के लिए स्टील एवं सोने के घड़े के लिए स्वर्ण पिण्ड की अपेक्षा होगी। सैकड़ों कुशल कारीगर भी तांबे से सोने का आभूषण नहीं बना सकते। अत: यह स्पष्ट है कि दही जमाने के लिए दूध की अपेक्षा होगी।

5. कारणभावात्

कारण और कार्य में कोई अन्तर नहीं है। कार्य कारण का भाव है अर्थात् कार्य का अव्यक्त रूप कारण है और कारण का व्यक्त रूप कार्य है। कार्य कारणात्मक होता है, अत: वह अपनी उत्पत्ति के पूर्व सत् होता है।[5] अन्यत्र भी कहा गया है कि कार्य कारण से भिन्न नहीं होता अत: यदि कारण का अस्तित्व है तो कार्य भी उससे अभिन्न होगा, क्योंकि कारण का जो स्वभाव होता है वही कार्य का स्वभाव होता है।[6] अत: कारण और कार्य में अवस्थाभेद का अन्तर है, अन्य कोई अन्तर नहीं है।

सत्कार्यवाद के प्रकार

सांख्य के सत्कार्यवाद को तर्क की कसौटी पर सिद्ध कर लेने के बाद अब प्रश्न होता है कि सत्कार्यवाद के कितने भेद हैं? मूलत: सत्कार्यवाद के दो भेद किये जाते हैं-1. परिणामवाद, 2. विवर्तवाद। परिणामवाद से तात्पर्य कार्य कारण का वास्तविक परिवर्तन है। जैसे दूध का वास्तविक परिवर्तन दही है, तिल का वास्तविक परिवर्तन तेल है। सांख्य दर्शन सभी प्रकार के परिणाम का कारण जहां प्रकृति को मानता है वहीं रामानुजाचार्य सभी प्रकार के परिवर्तन का कारण ब्रह्म को मानते हैं। सांख्य और रामानुज के परिणामवाद में यही मूलभूत अन्तर है। विवर्तवाद से तात्पर्य है कार्य, कारण का वास्तविक परिवर्तन नहीं अपितु आभासिक परिवर्तन है। जैसे रस्सी में सर्प। रस्सी को देखकर हम सर्प का विवर्त करते हैं न कि सही मायने में सर्प वहां उपस्थित होता है। निम्न चार्ट से यह स्पष्ट है-

सत्कार्यवाद

परिणामवाद — विवर्तवाद (शंकर)

प्रकृति परिणामवाद (सांख्य) — ब्रह्म परिणामवाद (रामानुज)

सांख्य के सत्कार्यवाद की मीमांसा कर लेने के बाद प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या सांख्य का सत्कार्यवाद तर्क की कसौटी पर सही सिद्ध हो सकता है। सांख्य के सत्कार्यवाद के अनुसार जब कारण और कार्य-अभिन्न है तो परिवर्तन और विकास के लिए कोई स्थान नहीं होगा। यदि किसी दर्शन में विकास और परिवर्तन के लिए स्थान नहीं तो वह दर्शन संसार की व्याख्या कैसे कर सकता है? सांख्य की विडम्बना है कि सांख्य विकासवादी होते हुए भी कारण-कार्य की इस रूप में मीमांसा करते हैं जो कथमपि ठीक नहीं है। जहां सांख्य के सत्कार्यवाद का सकारात्मक पक्ष यह है कि किसी अर्थ के घटित होने के लिए उसी प्रकार के कारण की अपेक्षा होगी वहीं इस सिद्धान्त का नकारात्मक पक्ष है कि सांख्य के कारण और कार्य की समरूपता के लिए उसकी एकरूपता स्वीकार कर विकास और परिवर्तन के लिए कोई अवकाश नहीं रखा, जो ठीक नहीं है।

असत्कार्यवाद

कारण-कार्य सम्बन्धी यह मत न्याय-वैशेषिकों का है जिसके अनुसार कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व कारण में सत् नहीं रहता है। असत् कार्यवाद अर्थात् कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व कारण में असत् होता है। जब कार्य कारण में नहीं होता है तो इसका मतलब वह नया उत्पन्न होता है, इसीलिए न्याय-वैशेषिक कार्य की उत्पत्ति बिल्कुल नया मानते हैं। न्यायवैशेषिक दार्शनिक सांख्य के सत्कार्यवाद के विपरीत कार्य को कारण से सर्वथा नया मानते हैं। उनके अनुसार कारण से कार्य का नया आरम्भ होता है, इसीलिए इस मत को आरम्भवाद भी कहते हैं। कार्य के रूप में नये अध्याय का सृजन होता है।

अपने सिद्धान्त की पुष्टि में न्याय-वैशेषिक दार्शनिक सांख्य से कुछ प्रश्न करते हैं जिससे सांख्य के सत्कार्यवाद

स्थित होता है।

ा
द (शंकर)

ा
ाद (रामानुज)

र लेने के बाद
त्कार्यवाद तर्क
के सत्कार्यवाद
है तो परिवर्तन
।। यदि किसी
न नहीं तो वह
ा? सांख्य की
र भी कारण-
पि ठीक नहीं
क पक्ष यह है
कार के कारण
क पक्ष है कि
लिए उसकी
के लिए कोई

ाषिकों का है
ारण में सत्
ी उत्पत्ति के
में नहीं होता
है, इसीलिए
ा मानते हैं।
के विपरीत
के अनुसार
नए इस मत
अध्याय का

क दार्शनिक
सत्कार्यवाद

का खण्डन और असत्कार्यवाद का मंडन होता है, जो इस प्रकार है[7] –

1. यदि सत्कार्यवाद के अनुसार कारण और कार्य एक है तो अलग-अलग नाम की संज्ञा क्यों? दोनों एक हैं तो दोनों के एक नाम होने चाहिए। जबकि एक का नाम 'कारण' है तो दूसरे का नाम 'कार्य' है। नाम या संज्ञा का पार्थक्य यह सिद्ध करता है कि दोनों अलग-अलग हैं।
2. यदि कारण और कार्य एक हैं तो दोनों के स्वरूप में अन्तर क्यों है? कारण अर्थात् मिट्टी का पिण्ड और कार्य अर्थात् मिट्टी के घड़े का स्वरूप एक जैसा नहीं है। पिंड का आकार अलग है तो घड़े का आकार भी पृथक् है। यदि दोनों के आकार एक जैसे नहीं हैं तो दोनों एक न होकर पृथक्-पृथक् हैं अर्थात् कारण और कार्य का स्वरूप पृथक् है।
3. यदि कारण और कार्य एक हैं तो दोनों के उपयोग में अन्तर क्यों? अर्थात् कारण का पृथक् उपयोग होता है तो कार्य का पृथक् उपयोग होता है। लकड़ी जलाने के काम आती है तो लकड़ी की कुर्सी बैठने के काम आती है अत: लकड़ी और लकड़ी की कुर्सी में अन्तर है, अत: सत्कार्यवाद ठीक नहीं है।
4. यदि कारण और कार्य एक है तो रूपान्तरण की जरूरत नहीं होनी चाहिए। जबकि हम देखते हैं कि कारण का रूपान्तरण होता है और इसके लिए निमित्त कारण की अपेक्षा होती है, अत: सत्कार्यवाद ठीक नहीं है।

अत: जहां सत्कार्यवादी कारण और कार्य में अभेद मानते हैं वहीं न्याय-वैशेषिक दोनों में भेद मानते हैं। उनके अनुसार कारण और कार्य दोनों के स्वरूप, शक्ति और विन्यास में भेद दृष्टिगोचर होता है अर्थात् कार्यकारणयो: स्वरूप शक्ति संस्थान भेदस्य प्रत्यक्ष सिद्धत्वात्।[8] अत: कारण और कार्य में भेद है।

3. सत्कारणवाद

आचार्य शंकर सांख्य की तरह सत्कार्यवादी हैं। वे भी यह मानते हैं कि कदापि और कथमपि कार्य कारण से भिन्न कोई सत्ता नहीं है। जब कार्य कारण से भिन्न और स्वतन्त्र नहीं है तो दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि कारण ही सत् है, इसीलिए इस सिद्धान्त से सत्कारणवाद कहा जाता है। इसे विवर्त इसलिए कहा जाता है, क्योंकि कि यहां कार्य को विवर्त माना गया है अर्थात् कार्य कारण का वास्तविक रूपान्तरण न होकर आभासरूप है। अपने कारण-कार्य सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि कार्यरूप सत्ता तो मिथ्या है। वस्तुत: कारण से भिन्न कार्य नहीं है। कहा है– न हि कारणव्यतिरेकेण कार्यनाम वस्तु।[9]

आचार्यशंकर न्यायवैशेषिक के असत्कार्यवाद का खण्डन करते हुए कुछ तर्क देते हैं, जो इस प्रकार है–

1. मिट्टी से घड़ा तथा सोने से सोने के आभूषण को पृथक् नहीं किया जा सकता। इससे यह सिद्ध होता है कि कार्य-कारण में अभेद सम्बन्ध है। अत: कारण से कार्य की उत्पत्ति के आधार पर भेद नहीं किया जा सकता है।
2. असत्कार्यवादियों के अनुसार यदि कार्य पहले से कारण में है तो निमित्त कारण का क्या प्रयोजन है? आचार्य शंकर के अनुसार निमित्त कारण से किसी नये द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती है अपितु द्रव्य में निहित शक्ति की अभिव्यक्ति होती है। कार्य तो केवल कारण की अभिव्यक्तिमात्र है न कि नूतन उत्पत्ति। अत: कार्य को कारण का अवस्था विशेष मात्र मानना उचित है।[10]
3. असत्कार्यवाद के अनुसार कारण और कार्य दोनों सही नहीं हो सकते। शंकराचार्य के अनुसार असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती अर्थात् वंध्या का पुत्र जो असत् है उसे वीर या बहादुर कैसे कह सकते हैं?
4. असत्कार्यवादी के अनुसार कारण के नष्ट होने पर कार्य का आविर्भाव होता है। आचार्य शंकर के अनुसार यह मिथ्या प्रलाप है। कारण कभी नष्ट नहीं होता। दही बनकर भी दूध नष्ट नहीं होता, अंकुर बनकर भी बीज नष्ट नहीं होता है।[11]
5. असत्कार्यवाद के अनुसार कार्य नया उत्पन्न होता है, अत: कारण और कार्य पृथक्-पृथक् है। आचार्य शंकर के अनुसार जो कार्य अभिव्यक्त होता है वह कारण के रहने पर ही होता है, कारण के न रहने पर अभिव्यक्त नहीं होता है, अत: कारण और कार्य में अभेद सम्बन्ध है।

इस प्रकार आचार्य शंकर न्याय-वैशेषिकों के असत्कार्यवाद का खण्डन करते हुए सत्कार्यवाद के सत्कारणवाद स्वरूप को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार एक मात्र कारण ब्रह्म ही सत् है। ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है। जगत् ब्रह्म का विवर्त मात्र है। समस्त नामरूपादि जगत् स्वयं तो मिथ्या है, केवल ब्रह्म के विवर्तरूप में ही सत्य है।[12] यही शंकर का विवर्तवाद है। अत: शंकर के विवर्तवाद के अनुसार केवल कारण की ही एकमात्र सत्ता है, कार्य की नहीं। मिट्टी ही सत् है। मिट्टी के अनेक विकार हो सकते हैं किन्तु वे विवर्त रूप होंगे।[13]

असत्कारणवाद

गौतमबुद्ध के चार आर्यसत्य में द्वितीय आर्यसत्य ही दु:ख समुदय अर्थात् दु:खों का कारण है। उनके अनुसार दु:ख अकारण नहीं है, उनके भी कारण है। संसार की कोई घटना जब अकारण नहीं होती तो दु:ख भी अकारण नहीं है। चूंकि बौद्ध शाश्वतवाद में विश्वास नहीं करते। उनके अनुसार कुछ भी शाश्वत या नित्य नहीं है। सब कुछ उत्पन्न और नष्ट होता है। इसीलिए वे अनित्यवादी कहलाते हैं। कालान्तर में उनके अनुयायी क्षणिकवादी कहलाये, क्योंकि सर्व क्षणिकं को उन्होंने महत्त्व दिया। जब सब कुछ अनित्य है या क्षणिक है तो यहां पर यह कहना भी प्रासंगिक होगा कि कारण भी असत् है। बौद्ध कारण को सत् नहीं मान सकते। ऐसा करने पर उनका अनित्यवाद या क्षणिकवाद का सिद्धान्त धराशायी हो जायेगा। इसीलिए बौद्ध दार्शनिकों का मानना है कि कारण के असत् अर्थात् नष्ट होने पर कार्य उत्पन्न होता है। अत: बौद्ध दार्शनिक कारण को असत् मानते हैं।

बौद्ध दर्शन का कारण कार्य सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद के नाम से जाना जाता है। प्रतीत्य का अर्थ है ऐसा होने पर और समुत्पाद का अर्थ है ऐसा होता है। तात्पर्य है कि कारण के होने पर कार्य होता है। कारण-कार्य के इस चक्र को जन्म-मरण चक्र, भवचक्र कहा गया है। चूंकि इस चक्र में बारह अंग है, अत: इसे द्वादश निदान कहा गया है। जो इस प्रकार है-1. अविद्या, 2. संस्कार, 3. विज्ञान, 4. नामरूप, 5. षड़ायतन, 6. स्पर्श, 7. वेदना,, 8. तृष्णा, 9. उपादान, 10. भव, 11. जाति, 12. जरा-मरण।

इस प्रकार वर्तमान जीवन का कारण भूत जीवन और भविष्य जीवन का कारण वर्तमान जीवन है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्येक पूर्ववर्ती अपने उत्तरवर्ती पर छाप छोड़कर स्वयं नष्ट हो जाता है। कारण नष्ट होने के कारण ही असत्कारणवाद सत् है और उत्तरवर्ती पर अपनी छाप छोड़ जाता है। अत: स्मृति, पुनर्जन्म और मोक्ष संभव है। तात्पर्य यह है कि बौद्ध प्रतीत्यसमुत्पाद (असत्कारणवाद) को मानते हुए भी स्मृति, पुनर्जन्म और मोक्ष की व्याख्या करने में सफल होते हैं। इसीलिए प्रसिद्ध आचार्य नागार्जुन प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रशंसा करते हुए कहते हैं -

य: प्रतीत्यसमुत्पादं प्रपञ्चोपशमं शिवम्।
देशयामास समवुद्धस्तं वंदे वदतां वरम॥[14]

अर्थात् संक्षेप में प्रतीत्यसमुत्पाद व्यावहारिक दृष्टि से प्रपञ्च है और पारमार्थिक दृष्टि से प्रपञ्च का उपशम निर्वाण है।

सदसत्कार्यवाद - जैन दर्शन एक समन्वयवादी दर्शन है। अनेकान्तवाद को स्वीकार करने के कारण जैन दर्शन प्राय: दार्शनिक सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित करता है। कारण-कार्यवाद के सिद्धान्त में भी जैनदर्शन किसी प्रकार के एकान्तवाद को नहीं मानता है। जैन दर्शन को कोरा सत्कार्यवाद स्वीकार नहीं है, क्योंकि सत्कार्यवाद को स्वीकार करने पर विकास और परिवर्तन के लिए अवकाश नहीं रह जाता है। कोरा असत्कार्यवाद भी स्वीकार नहीं है, क्योंकि असत्कार्यवाद मानने पर परिवर्तन और विकास का आधार धराशायी हो जायेगा। किसी भी कारण से किसी भी कार्य की उत्पत्ति सिद्ध हो जायेगी। फिर गति में सहायक अधर्मास्तिकाय और स्थिति में सहायक धर्मास्तिकाय हो जायेगा जबकि ऐसा नहीं हो सकता।

अत: जैन के सदसत्कार्यवाद के अनुसार कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्ण कारण में सत् भी होता है और असत् भी होता है। जैसे कार्य घड़ा मिट्टी में सत् भी है और असत् भी। चूंकि मिट्टी का घड़ा मिट्टी से बनेगा, अत: सत् है किन्तु मिट्टी के आकार (कारण) से घड़े का आकार (कार्य) भिन्न है, अत: असत् भी है। जैन दर्शन के अनुसार गुणपर्यायवद् द्रव्यम्[15] अर्थात् द्रव्य गुण और पर्याय से युक्त है। द्रव्य के इसी स्वरूप से सद्सत्कार्यवाद को समझा जा सकता है। कार्यरूप द्रव्य गुण की दृष्टि से कारणरूप द्रव्य में अन्तर्निहित रहता है अत: सत्कार्यवाद सिद्ध है। कार्यरूप द्रव्य पर्याय की दृष्टि से कारण रूप द्रव्य से सदैव नूतन होता है, अत: सद्सत्कार्यवाद सिद्ध है। कहा भी गया है-

करते हैं। जैन दार्शनिक अनेकान्तवादी होने के कारण सद्सत्कार्यवाद को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार भारतीय दर्शनों में कारण-कार्यवाद सिद्धान्त उनके मूल दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार होने के कारण ही स्वरूपत: भिन्न-भिन्न है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. तर्कसंग्रह - 17
2. अन्यथासिद्धशून्यस्य नियत पूर्ववर्तिता - भा. 4.16
3. ग्रीक दर्शन, डॉ. छोटेलाल त्रिपाठी, पृ. 228
4. सांख्यकारिका - 9
5. कारणभावाच्च कार्यस्य कारणात्मकत्वात् - तत्व कौमुदी
6. कारणभावादिति कारण स्वभावात्। जयमंगला।
7. न्याय कंदली, 341
8. वही, 343
9. तै. उप. भाष्य 2/1
10. ब्र.सू.शा.भा. 2/2/17
11. वही, 2/1/18
12. छान्दोग्य उप. भाष्य - 7/3/2
13. ब्र.सू.शा.भा. 2/1/18
14. माध्यमिक कारिका
15. तत्त्वार्थ सूत्र
16. द्रव्यानुयोगतर्कणा
17. भाषा परिच्छेद, 17
18. वही, 18
19. तर्क संग्रह - 18
20. भाषा परिच्छेद, 135
21. योगसूत्र (1/28) के व्यास भाष्य से

—निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूँ-341 306 (राजस्थान)

◆ ◆ ◆